

महामानव बुद्ध की महान विद्या  
विपश्यना का उद्गम और विकास



विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का



शील धरम की नींव है, ध्यान धरम की भीत ।  
प्रज्ञा छत है धरम की, मंगल भवन पुनीत ॥



शील समाधि ज्ञान की, बही त्रिवेणी धार ।  
डुबकी मारे सो तरे, हो दुखसागर पार ॥

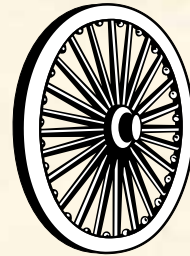


प्रज्ञा शील समाधि ही, सत्य धरम का सार ।  
काया वाणी चित्त के, सुधरें सब व्यवहार ॥



महामानव बुद्ध की महान विद्या  
विपश्यना का उद्गम और विकास

विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का



विपश्यना विशोधन विन्यास  
धम्मगिरि, इगतपुरी

© विपश्यना विशोधन विन्यास  
सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : २००९  
द्वितीय संस्करण : २०११  
तृतीय संस्करण : फरवरी २०२३

विश्व विपश्यना पगोडा की दर्शक दीर्घा के ये चित्र श्री वासुदेव कामथ के मार्गदर्शन में  
म्यंमा के ऊ म्यिं ठ्वे, ऊ औं बा (ऊ औं म्यिं) तथा उनके सहायक कलाकारों द्वारा चित्रित किये गये।

मूल्य: ₹.  
Price: Rs.

ISBN 978-81-7414-307-5

प्रकाशक:

विपश्यना विशोधन विन्यास

धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२ ४०३, जिला- नाशिक, महाराष्ट्र

फोन: ०२५५३-२४४९९८, २४३५५३, २४४०७६, २४४०८६, २४४१४४, २४४४४०

Email: vri\_admin@vridhamma.org

Website: www.vridhamma.org

मुद्रक:

अपोलो प्रिंटिंग प्रेस

२५९, सीकाफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी., सातपुर, नाशिक-४२२००७, महाराष्ट्र

## विषय-सूची

प्राक्कथन.....	४	२९. सही अरहंत हुए.....	७१	५९. पटाचारा.....	१३१	८७. बुद्ध की हत्या का षड्यंत्र.....	१८७
१. तापस सुमेध .....	११	३०. मगध में पुनरागमन.....	७३	६०. किसान गौतमी .....	१३३	८८. नालागिरि.....	१८९
२. गर्भाधान-स्वप्न .....	१३	३१. सारिपुत्र और मोगल्लान.....	७५	६१. सही यज्ञ .....	१३५	८९. मैं स्वयं हत्या करूंगा.....	१९१
३. जन्म.....	१५	३२. भरपूर निंदा .....	७७	६२. सोणदंड: ब्राह्मण बनाने वाले धर्म .....	१३७	९०. भयभीत अजातशत्रु.....	१९३
४. ऋषि कालदेवल .....	१७	३३. निंदा-प्रशंसा .....	७९	६३. महासाल ब्राह्मण .....	१३९	९१. सहिष्णुता और समता.....	१९५
५. बालक सिद्धार्थ का प्रथम ध्यान .....	१९	३४. कपिलवस्तु आगमन.....	८१	६४. आलवक .....	१४१	९२. धर्म-समन्वित भगवान के पैर चूमे .....	१९७
६. हिंसक देवदत्त .....	२१	३५. यशोधरा .....	८३	६५. सदा सुखी तथागत .....	१४३	९३. विनाशक जातिवाद.....	१९९
७. अतुलनीय तीरंदाज .....	२३	३६. राहुल.....	८५	६६. दो हंडियां .....	१४५	९४. लिच्छवियों को गणराज्य की सुरक्षा का उपदेश .....	२०१
८. पराक्रमी योद्धा और अद्भुत घुड़सवार .....	२५	३७. राहुल की प्रव्रज्या .....	८७	६७. अंगुलिमाल .....	१४७	९५. अंबपाली एवं लिच्छवी राजकुमार.....	२०३
९. सुप्पबुद्ध और विवाह-मंगल .....	२७	३८. सात प्रव्रजित .....	८९	६८. सुंदरिक भारद्वाज .....	१४९	९६. मातृसेवा .....	२०५
१०. चार निमित्त .....	२९	३९. अनाथपिंडिक.....	९१	६९. धर्मदूत पूर्ण .....	१५१	९७. भगवान बुद्ध का सही पूजन .....	२०७
११. गृह त्याग .....	३१	४०. उत्तम ब्राह्मण सुनीत .....	९३	७०. गंधारनरेश पुक्कुसाति .....	१५३	९८. बुद्ध की सही वंदना .....	२०९
१२. श्रमण वेश धारण किया.....	३३	४१. सोपाक.....	९५	७१. अक्कोस भारद्वाज .....	१५५	९९. सुभद्र की प्रव्रज्या.....	२११
१३. मगध की यात्रा .....	३५	४२. दासी खुज्जुत्तरा .....	९७	७२. भगवान की सही वंदना .....	१५७	१००. तथागत का पार्थिव शरीर.....	२१३
१४. आचार्य आलार कालाम .....	३७	४३. शाक्य और कोलिय .....	९९	७३. अछूत कन्या प्रकृति .....	१५९	१०१. पहला व दूसरा संगायन.....	२१६
१५. उद्दक रामपुत्र.....	३९	४४. भिक्षुणीसंघ की स्थापना .....	१०१	७४. प्रकृति द्वारा विवाह का प्रस्ताव.....	१६१	१०२. हृदय जीतने वाला सम्राट .....	२१९
१६. दुष्करचर्या और दुष्करचर्या का त्याग.....	४१	४५. सच्चक.....	१०३	७५. स्थितप्रज्ञ अरहंत की अद्भुत सहिष्णुता!.....	१६३	१०३. तीसरा संगायन, सोण और उत्तर.....	२२१
१७. पांच स्वप्न.....	४३	४६. रूप-गर्विता खेमा.....	१०५	७६. वीतक्रोध .....	१६५	१०४. भिक्षु महेंद्र.....	२२३
१८. सुजाता की खीर.....	४७	४७. चमत्कार पर रोक .....	१०७	७७. ब्रह्मायु धन्य हुआ!.....	१६७	१०५. भिक्षुणी संघमिता .....	२२५
१९. मार पराजित.....	४९	४८. भिक्षुणी सिसूपचाला.....	१०९	७८. संन्यासी दारुचीरिय : देखने में केवल देखना .....	१६९	१०६. चौथा संगायन .....	२२७
२०. सम्यक संबोधि.....	५१	४९. चिंचा माणविका.....	१११	७९. रोगी की सेवा .....	१७१	१०७. दूषित हुए सद्धर्म का सुधार.....	२२९
२१. मार-कन्याओं का दुष्प्रयत्न विफल.....	५३	५०. सुंदरी परिव्राजिका .....	११३	८०. मुक्त हुआ बंदी .....	१७३	१०८. पाचवां संगायन.....	२३१
२२. तपुस्स और भल्लिक .....	५५	५१. आदर्श दंपति .....	११५	८१. धम्मदिन्ना .....	१७५	१०९. भिक्षु लैडी सयाडो .....	२३३
२३. कृतज्ञ संबुद्ध (उपक) .....	५७	५२. बोधिराजकुमार.....	११७	८२. मिगारमाता विशाखा.....	१७७	११०. छठा संगायन .....	२३५
२४. धर्मचक्रप्रवर्तन .....	५९	५३. ब्राह्मण मागाण्डिय .....	११९	८३. सुजाता सुधरी.....	१७९	१११. गृहस्थ संत सयातैजी .....	२३७
२५. यश और यश के पिता के घर भोजन ...	६१	५४. गालियों की बौछार .....	१२१	८४. आनंदबोधि .....	१८१	११२. सयाजी ऊ बा खिन .....	२३९
२६. जाओ धर्मदूतों! धर्मप्रचारण के लिए विचरण करो!.....	६४	५५. नदी स्नान से पाप नहीं धुलते .....	१२३	८५. वृषल कौन?.....	१८३	११३. सयाजी ऊ गोयन्का एवं माताजी .....	२४१
२७. उरुवेल की कुटिया में क्रुद्ध नागराज .....	६७	५६. भगवान का एकांतवास .....	१२५	८६. सत्पुरुष बिबिसार .....	१८५	• विपश्यना: संक्षिप्त परिचय.....	२४९
२८. मिथ्या अरहंत.....	६९	५७. किस भारद्वाज.....	१२७			• बुद्धवचन सुरक्षित.....	२५०
		५८. वेरंजा .....	१२९			• विपश्यना साधना केन्द्र.....	२५१

## प्राक्कथन

प्रस्तुत चित्रावली “बुद्ध-जीवन-चित्रावली” का संक्षिप्त संस्करण है। भगवान् बुद्ध के जीवनकाल में और भी कितनी ही महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटीं, कितने महत्त्वपूर्ण लोग उनसे मिले; इन सब का विवरण बहुत विशद है। उन्हें और उनसे संबंधित पूर्व जीवनो की घटनाओं का चित्रण किया जाय तो किसी भी दूरदर्शन द्वारा १,००० से अधिक धारावाहिक बन सकते हैं।

बुद्ध और बुद्ध की शिक्षा को लेकर अपने देश में बहुत-सी भ्रांतियां फैली हैं। उनका निराकरण और तथ्यों का उद्घाटन होना आवश्यक है। साधक के लिए तो अत्यंत आवश्यक है। अन्यथा वह भ्रांतियों में ही उलझा रह जायगा। वास्तविकता को जान ही नहीं पायगा। प्रस्तुत “बुद्ध-जीवन-चित्रावली” से, सब भ्रांतियों से नहीं तब भी कुछ से छुटकारा अवश्य मिलेगा।

**जैसे** – आखिर उसने राजकीय वैभव, सुंदरी युवा पत्नी और नवजात शिशु को त्याग कर वैरागी का कष्टमय जीवन क्यों अपनाया? अपने परिवार वालों से उसका कोई झगड़ा नहीं हो गया था, जिससे तंग आकर उसने गृह त्यागा। उन सब से उसके अच्छे संबंध थे। इसी कारण जब उसने सार्वजनीन दुःखनिवारण-विद्या खोज निकाली, तब उसे अन्य अनेक दुखियारों के साथ-साथ अपने स्वजनों-परिजनों को भी बांटी।

उसकी खोज का एक मात्र उद्देश्य इस सच्चाई का उद्घाटन करना था कि प्राणी के दुःखों का सही कारण और उसके निवारण का सही उपाय क्या है? इसी खोज में उसने अपने जीवन के छः वर्ष कठोर परिश्रम, पुरुषार्थ और पराक्रम में बिताये और अंततः समस्या का सही समाधान ढूँढ निकाला। **पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु** – जो सच्चाई पहले कभी सुनी ही नहीं थी, वह प्रकट हो गयी।

वह सच्चाई न तो समाज में व्याप्त थी और न ही अध्यात्म के क्षेत्र में उसका प्रयोग था। तब सुनता भी कैसे? सुनता भी किससे? देखें, बुद्ध के समय भारत की आध्यात्मिक परंपराओं में क्या सच्चाई प्रचलित थी? और क्या सच्चाई प्रचलित होनी तो दूर, बल्कि विज्ञप्त भी नहीं थी?

उन दिनों की लगभग सभी परंपराओं में यह मान्यता बहुप्रचलित थी कि—

छः इंद्रियों (आंख, नाक, कान, जीभ, त्वचा और मानस) का, इनके अपने-अपने विषयों (रूप, गंध, शब्द, रस, कोई स्पर्शनीय पदार्थ और चिंतन) से स्पर्श होता रहता है। इसके कारण तृष्णा, यानी प्रिय को बनाये रखने या बढ़ाने की रागमयी तृष्णा, और अप्रिय को दूर हटाने की द्वेषमयी तृष्णा, जागती रहती है।

स्पर्श के कारण जहां राग-द्वेष जागा, वहीं दुःख आरंभ हुआ। जागा हुआ प्रत्येक राग-द्वेष दुःख ही प्रकट करता है। अतः यह सर्वविदित उपदेश प्रचलित था कि इंद्रियों द्वारा विषयों का स्पर्श हो तो तृष्णा, यानी राग-द्वेष न जगने दो। ऐन्द्रिय विषयों से संपर्क होने पर राग-द्वेष की प्रतिक्रिया मत करो।

संबुद्ध की सर्वज्ञता कहती है कि यह तो केवल भासमान सत्य है, परम सत्य नहीं है। अंतिम सत्य नहीं है। अधूरा सत्य है। पूर्ण सत्य नहीं है। अधूरे सत्य के पालन से अधूरा ही लाभ होगा। पूर्ण लाभ नहीं हो सकता।

अंतिम और पूर्ण सत्य यह है कि **सळायतनपच्चया फस्सो**, छः आयतन, यानी इंद्रियों का स्पर्श तो ठीक, परंतु फस्सपच्चया वेदना, यानी इंद्रियों के अपने विषय से स्पर्श होने पर, शरीर में कोई-न-कोई वेदना (संवेदना) होती है और तब, **वेदनापच्चया तण्हा**, संवेदना की अनुभूति होने पर तृष्णा जागती है।

इससे स्पष्ट हुआ कि **फस्सपच्चया वेदना**, यानी स्पर्श होने पर जो संवेदना हुई, उसका ज्ञान न हो तो हम मूल को भुला कर, टहनियों में ही उलझे रह जाते हैं।

स्पर्श होने पर जो शारीरिक संवेदना प्रकट हो उसके प्रति सजग रहें और समता में स्थित रहें तब मानस की जड़ों तक राग-द्वेष से मुक्त होने लगे। राग या द्वेष का बाहरी आलंबन जो भी हो, लगता यों है कि हम उस आलंबन के संपर्क में आने पर उसे प्रिय मान कर उसके प्रति राग जगाते हैं, अप्रिय मान कर उसके प्रति द्वेष जगाते हैं। परंतु यह वास्तविक सत्य नहीं है। भासमान सत्य है। वास्तविक सत्य को जानना और उसके प्रति सजग रहते हुए समता में स्थित रहना; वीतराग होने

की, वीतद्वेष होने की सही कुंजी है। इसी वेदनापच्यया तण्हा से छुटकारा पाना है। वास्तविकता के स्तर पर यही वीतराग होने का मंगल पथ है। यही कल्याणी विपश्यना है। यही सर्वदुःख-विमोचनी विद्या है।

एक उदाहरण— शिविर में सम्मिलित हुए एक व्यक्ति को कुत्ते के भौंकने का प्रबल भय था। पढ़ा-लिखा वयस्क व्यक्ति था। बुद्धि के स्तर पर खूब समझ रहा था कि वह सुरक्षित मकान में, अपने बंद कमरे में सो रहा है। कुत्ता बाहर कहीं मुहल्ले में भौंक रहा है। वह उसके समीप तक भी नहीं आ सकता। फिर काहे का भय? परंतु यह बुद्धि की समझ माल है। वास्तविकता यह है कि कुत्ते के भौंकने की आवाज आयी कि भयभीत हुआ। उसे बुद्धि के स्तर पर कौन समझाये और कैसे समझाये? परंतु सौभाग्य से विपश्यना के शिविर में आ गया। शरीर की संवेदनाओं का अनुभव होने लगा। अभ्यास करते-करते इन शारीरिक संवेदनाओं के प्रति तटस्थ रहना सीख लिया। अब कुत्ते के भौंकने का भय अपने आप दूर हो गया। भय उन शारीरिक संवेदनाओं में समाया हुआ था। उन संवेदनाओं के प्रति तटस्थ रहना आ गया, तब भय स्वतः दूर हो गया।

शिविर में ऐसे अनेक लोग आते रहते हैं जिन्हें शराब से, गांजे से, जूप से, व्यभिचार आदि दुष्कर्मों से आसक्ति है। इन आसक्तियों के कारण जो व्यसन हैं उनसे चाहते हुए भी वे मुक्त नहीं हो सकते। वस्तुतः व्यसन इन पदार्थों से नहीं, इनके सेवन से जो शारीरिक संवेदनाएं होती हैं, उनसे है। अपने दुःख का सही कारण न जानने के कारण व्यसन के गुलाम होकर दुष्कर्म किये जाते हैं और अपने वर्तमान और भविष्य के लिए दुःख का निर्माण किये जाते हैं।

शरीर और वाणी से दुष्कर्म करेंगे तो मन में विकारों का तूफान जागेगा, तब व्याकुलता ही जागेगी। इससे छुटकारा पाने के लिए भगवान ने विपश्यना विद्या ढूंढी। इसी को सुस्पष्ट करने के लिए निसर्ग के कुछ नियम ढूंढ निकाले।

एक तो यही, जिसका उल्लेख अभी-अभी किया कि किसी भी इंद्रिय द्वारा अपने विषय का स्पर्श होते ही शरीर में कोई संवेदना प्रकट होती है। दूसरा यह कि इसी संवेदना के प्रति हम राग-द्वेष की प्रतिक्रिया करते हैं। इस अनजानी

सच्चाई को जान कर ही उसके अंतर्चक्षु, ज्ञानचक्षु, प्रज्ञाचक्षु खुले; विद्या प्राप्त हुई, संबोधि प्रकट हुई, प्रकाश प्रकट हुआ, जिससे कि बोधिसत्त्व सम्यक संबुद्ध बना।

अध्यात्म जगत के इस सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक ने २६०० वर्ष पहले बिना किसी आधुनिक वैज्ञानिक यंत्र का सहारा लिए हुए, केवल अपने मनोबल से यह सच्चाई जान ली कि ठोस लगने वाला हमारा शरीर ही नहीं, बल्कि समस्त भौतिक जगत में वस्तुतः कुछ भी ठोस नहीं है। यह केवल भासमान सत्य है, प्रज्ञप्त सत्य है। यानी ऐसा प्रतीत होता है। परम सत्य यह है कि भौतिक जगत के सारे पदार्थ असंख्य नन्हें-नन्हें परमाणुकणों से बने हैं, जो इतने नन्हें हैं कि सामान्य आंखों द्वारा देखे भी नहीं जा सकते। इन्हें कलाप कहा। ये कलाप भी स्थिर नहीं, ठोस नहीं। प्रतिक्षण प्रज्वलित-प्रकंपित होते रहते हैं—

**सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो ।**

— (सं०नि०, १.१६८, उपचालासुत्तं)

इन प्रकंपन की लहरों में इनका उदय-व्यय अर्थात् उत्पाद और व्यय होता रहता है—

**उप्पादवयधम्मिनो ।**

— उत्पाद होना और व्यय हो जाना, यह अनित्यता ही इनका धर्म है, स्वभाव है।

यही अनित्य स्वभाव चित्त और चित्तवृत्तियों का है।

पलक झपके, इतनी देर में इनका अनेक शतसहस्रकोटि बार उत्पाद हो-हो कर, व्यय हो जाता है। इससे भ्रम होता है कि ये नित्य हैं, स्थिर हैं।

शरीर और चित्त की इस शीघ्रगति वाली हलन-चलन से भी शरीर में संवेदनाएं पैदा होती हैं।

निसर्ग का एक और सत्य यह प्रकट हुआ—

## वेदनासमोसरणा सब्बे धम्मा ।

चित्त जिस चित्तवृत्ति को धारण करता है उसे धर्म कहा जाता है। निसर्ग का यह नियम है कि चित्त जो भी चित्तवृत्ति धारण करे, वह शरीर पर संवेदना के रूप में प्रवाहित होने लगती है।

शरीर और मानस के इस संयोग से भी संवेदनाएं होती हैं। बैठक, ऋतु और भोजन से भी संवेदनाएं होती हैं।

### मानस

उपरोक्त कारणों से होने वाली संवेदनाओं के अतिरिक्त मानस के अपने चार खंडों— विज्ञान(जानने वाला), संज्ञा(पहचानने और मूल्यांकन करने वाला), वेदना(संवेदना को अनुभव करने वाला), संस्कार(संवेदना को अनुभव करके प्रतिक्रिया करने वाला) की भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न संवेदनाएं होती हैं।

### शरीर

मानस के अतिरिक्त शरीर के चार तत्त्वों— पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु से संबंधित भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न संवेदनाएं होती रहती हैं।

इन अनेक प्रकार की संवेदनाओं में साधारणतया दो प्रकार की संवेदनाएं ही प्रमुख होती हैं— सुखद या दुःखद। अंतर्मन की गहराइयों में तत्क्षण इनकी अनुभूति होती है। यदि सुखद अनुभूति हो तो रागात्मक और दुःखद हो तो द्वेषात्मक प्रतिक्रिया होती है। ये प्रतिक्रियाएं ही संस्कार हैं। ये ही कर्मसंस्कार हैं, जिनमें से अनेक का स्वभाव मानस की गहराइयों में, जड़ों तक पुष्ट से पुष्टतर होता रहता है।

कुछ कर्मसंस्कार बड़े दुर्बल होते हैं— जैसे पानी पर खैची हुई लकीर। जैसे-जैसे खिंचती जाय, वैसे-वैसे मिटती जाय। कुछ ऐसे जैसे बालू पर खैची हुई लकीर, जो थोड़े समय में ही मिट जाती है। परंतु कुछ ऐसे जैसे कि पथरीली चट्टान पर छेनी और हथौड़े से खैची गयी लकीर, जो वर्षों तक नहीं मिटती।

इन कर्मसंस्कारों में कुछ अकुशल होते हैं, कुछ कुशल। जो अकुशल कर्मसंस्कार

हैं, वे अधोगति की ओर ले जाने वाले होते हैं और जो कुशल कर्मसंस्कार हैं वे दिव्य ऊर्ध्वगति की ओर। जो बहुत घने नहीं होते वे मानस के ऊपरी भाग में ही समाये रहते हैं। जो घने हैं, गहरे हैं, उनकी जड़ें अंतर्मन की गहराइयों से जुड़ी रहती हैं।

अपनी नासमझी से किन्हीं-किन्हीं दुर्बल, दूषित कर्मसंस्कारों को बार-बार दोहराते हुए हम उन्हें सघन व गहन बनाते रहते हैं और परिणामतः अपने वर्तमान और भविष्य को अधिक दुःखमय बनाते रहते हैं।

भगवान बुद्ध की ये खोजें महज बौद्धिक कौतूहल को संतुष्ट करने के लिए नहीं थीं। प्रत्युत उनका उद्देश्य इन सच्चाइयों द्वारा दुःखनिवारण का सही उपाय ढूंढना था। इसके लिए उन्होंने विपश्यना की आशुफलदायिनी विद्या खोज निकाली। इसमें संवेदनाओं पर प्रतिक्रिया न कर, समता में स्थित रहना सिखाया जाता है। इसने उन दिनों से लेकर आज तक अनगिनत लोगों को दुःखमुक्त किया है।

### विपश्यना

इस कल्याणी विद्या को सीखने के लिए साधक को कम से कम दस दिन किसी शांत, पावन वातावरण में, किसी अनुभवी मार्गदर्शक के निर्देशन में काम करना होता है।

### शिविर के दस दिन

शिविर के लिए 'दस दिन' की अवधि सुनते ही, सुनने वाला चौंकता है। हर व्यक्ति अपने आप को बहुत व्यस्त मानता है। अतः दस दिन का समय निकालने के लिए झिझकता है। औरों को क्या दोष दूं? मैं भी अपने पहले शिविर में सम्मिलित होने के पूर्व बहुत झिझका था। परंतु शिविर के दो दिन पहले परम पूज्य गुरुदेव से साधना की अन्धमान्यताविहीन सार्वजनीन और वैज्ञानिक रूपरेखा समझ कर, हिम्मत जुटायी और शिविर में सम्मिलित हो गया। दो दिन में मन साधना के प्रति आकर्षित होने लगा। दस दिन बीतते-बीतते इस आशुफलदायिनी विद्या से लाभान्वित हो कर धन्य हो गया। जीवनधारा ही बदल



गयी। लगभग सब का यही अनुभव है। अनेक लोग मुरझाये-मुरझाये चेहरों से शिविर में सम्मिलित होते हैं। दसवें दिन शिविर समापन पर प्रत्येक साधक का चेहरा आनंद से खिला होता है।

मनुष्य के जीवन का हर पल अनमोल है। किसी के जीवन के कीमती दस दिन व्यर्थ नष्ट नहीं किये जाने चाहिए। लोगों को प्रत्यक्ष लाभ होता है। इसी कारण हर वर्ष सारे संसार के १३५ विपश्यना केंद्रों में सभी संप्रदायों के लगभग एक लाख साधक शिविरों में सम्मिलित होते हैं। दस दिनों की अवधि का तो कहना ही क्या, अब तो २०, ३०, ४५ और ६० दिनों के शिविर भी लगते हैं और इन लंबे शिविरों में भी बहुधा प्रवेश न मिलने से साधक को निराशा होती है।

## मौन

इसी प्रकार शिविरों में अंतिम दिन को छोड़ कर, बाकी समय मौन रहने के नियम से भी कुछ लोग घबराते हैं। परंतु साधक को साधना-विधि के बारे में जब-जब कुछ भी अस्पष्टता हो, तब-तब चाहे जितनी बार अपने आचार्य से मिल कर स्पष्टीकरण करवा सकता है। साधकों के पारस्परिक बातचीत की ही मनाही होती है। साधक शीघ्र ही समझने लगता है कि मन कितना बातूनी है। वाणी से मौन रह कर ही इसे मौन किया जा सकता है। मौन का महत्त्व शीघ्र समझ में आने लगता है।

## विपश्यना विद्या के तीन सोपान हैं।

### शील

साधना के दौरान पांचों शीलों का कठोरतापूर्वक पालन करना आवश्यक है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि प्रत्येक बार शीलभंग करने से, यानी हत्या, चोरी, व्यभिचार, मिथ्याभाषण और नशे-पते का सेवन करने से अकुशल कर्मसंस्कार बनाते हैं जो वर्तमान और भविष्य दोनों को दुःख से भर देते हैं। दूसरे इन गहरे कलुषित संस्कारों के कारण अंतर्मन में इतना तूफान उठता रहता है कि विपश्यना द्वारा सच्चाई का अनुसंधान असंभव हो जाता है। अतः शिविर के

दौरान शील-पालन अनिवार्य है।

### समाधि

शील-सदाचार के पावन वातावरण को बनाये रखने के लिए, और आगे के अनुसंधान की सफलता के लिए, मन की एकाग्रता बहुत आवश्यक होती है। इसके लिए अपने सहज स्वाभाविक सांस के आवागमन के प्रति सजग रहते हुए चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास करना होता है।

हमारे दुःख और दुःख का कारण सार्वजनीन है। अतः दुःख के निवारण का उपाय भी सार्वजनीन होना चाहिए। भगवान ने यही अनुसंधान किया। उन्होंने बौद्ध धर्म के नाम से कोई संप्रदाय स्थापित नहीं किया। और न ही किसी को बौद्ध बनाया। उन्होंने धर्म सिखाया, जो सब का होता है। लोगों को धार्मिक बनाया, जो सब बन सकते हैं। अतः इस मार्ग पर संप्रदायवाद का कहीं नामोनिशान नहीं है। मार्ग का हर कदम सार्वजनीन है, सार्वकालिक है, सार्वभौमिक है। सब के लिए, सभी समय, सभी प्रदेशों में, समानरूप से प्रयोग में लाया जा सकता है। इसलिए सांस के साथ किसी शब्द का उच्चारण; किसी देवी, देवता, बुद्ध या गुरु की आकृति का ध्यान करना सर्वथा मना है। सांस भी स्वाभाविक हो, नैसर्गिक हो। अपने स्वभाव से जैसे भी आ रहा है, जैसे भी जा रहा है, उसे तटस्थभाव से केवल जानना है। सांस की कोई कसरत नहीं करनी होती। सांस के नैसर्गिक प्रवाह में कोई परिवर्तन नहीं करना होता।

साधक को सदा यथार्थ, यानी यथाभूत, के सहारे चलना होता है। साधक का आलंबन कभी यथाकृत नहीं, यथावाञ्छित नहीं, यथाकल्पित नहीं, यथाआरोपित नहीं हो जाय; इसका ध्यान रखना होता है।

सांस के यथार्थ सत्य के प्रति हर क्षण सजग रहते हुए उसे तटस्थभाव से जानते रहना है। स्वाभाविक सांस यदि लंबा है तो लंबा, ओछा है तो ओछा। बायीं नाशिका में से गुजरता है तो जानना है कि बायीं नाशिका में से गुजर रहा है। दाहिनी नाशिका में से गुजरता है तो जानना है कि दाहिनी में से गुजर रहा है। उसे बदलने का जरा भी प्रयत्न नहीं करना होता।

यों सच्चाई के प्रति सजग रहते हुए दूसरे या तीसरे दिन **नासिकगो**, यानी नाशिका के आगे **उत्तरोट्टस्स वेमज्झप्पदेसो दट्टब्बो**, (विभङ्ग-अट्टकथा ५३७, ज्ञानविभङ्गो) यानी ऊपर वाले होंट के बीच एक बिंदु पकड़ में आ जाता है। तब इस प्रकट हुए बिंदु पर चित्त-एकाग्रता का अभ्यास किया जाता है। इससे शीघ्र ही इस बिंदु पर कोई संवेदना अनुभव होने लगती है। यों तीन दिन बीतते-बीतते सिर के सिरे से पैर की पगथली तक, सारे शरीर में मन को घुमाते रहना है। बस विपश्यना आरंभ हो गयी। प्रज्ञा जाग उठी। सारे शरीर पर होने वाली भिन्न-भिन्न संवेदनाओं के प्रति सजग रहते हुए, तटस्थभाव बनाये रखना है। यह अभ्यास निरंतरता से करना है। इस मार्ग पर अभ्यास की निरंतरता ही सफलता की कुंजी है।

## प्रज्ञा

प्रज्ञा क्या है? प्रज्ञा, यानी प्रत्यक्ष ज्ञान। यही प्रमुख ज्ञान है। प्रकृष्ट ज्ञान है जो हमें मुक्ति की ओर ले जाता है। यह पढ़ा-पढ़ाया या सुना-सुनाया ज्ञान नहीं है, बल्कि स्वानुभूति द्वारा प्राप्त हुआ स्वयं अपना यथार्थ ज्ञान है। इसके निरंतर किये गये अभ्यास से बहुत-सी अनजानी सच्चाइयां प्रकट होने लगती हैं।

पूर्व पारमी संपन्न साधक हो तो शीघ्र ही, अन्यथा कुछ समय पश्चात यह तथ्य प्रकट होने लगता है कि अधोगति की ओर ले जाने वाले सभी कर्मसंस्कारों की जड़ें अंतर्मन की गहराइयों में सुषुप्त पड़ी रहती हैं। दुर्गति की ओर ले जाने वाले ये क्लेशमय दूषित कर्मसंस्कार जीवनधारा के साथ-साथ, सोये-सोये प्रवहमान होते रहते हैं। इसीलिए इन्हें अनुशय-क्लेश कहा गया। यदि किसी प्रकार की साधना द्वारा केवल मानस के ऊपरी स्तर पर छाये हुए दूषित कर्मसंस्कारों का क्षय कर ले तो भी अधोगति से नितांत विमुक्ति नहीं मिलती। परंतु जब साधक शरीर पर प्रकट हुई सभी गहन संवेदनाओं के प्रति तटस्थ सजगता का अभ्यास कायम रखता है, तब वीतराग स्थिति में पुष्ट होता रहता है, क्योंकि प्रज्ञा के द्वारा अनुभव करता है कि शरीर और चित्त से संबंधित जो संवेदनाएं प्रकट हो रही हैं, वे सभी अनित्य हैं, नश्वर हैं, भंगुर हैं, सतत परिवर्तनशील हैं। अतः उन्हें न सुखद मान

कर उनके प्रति राग जगाता है और न दुःखद मान कर द्वेष। यों सजगता और समता दोनों पुष्ट होती जाती हैं। तब अंतर्मन की जड़ों में समाये हुए कुसंस्कारों की उदीर्णा होती जाती है और साधक उनके प्रति भी समता में स्थित रहता है, तब उन कुसंस्कारों की निर्जरा होने लगती है। वे क्षीण होने लगते हैं। उनका क्षय होने लगता है। साधक को उतनी-उतनी अधोगति से मुक्ति मिलने लगती है। जब सारे अनुशय-क्लेशों की उदीर्णा होकर, उनका क्षय हो जाता है, तब अधोगति से पूर्णतया मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

## उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो ।

— उत्पाद हो-हो कर जब निरुद्ध हो जाते हैं तब उन कर्मसंस्कारों के उपशमन का सुख अनुभव होता है।

साधक जब विपश्यना द्वारा अधोगति के संस्कारों से सर्वथा मुक्त हो जाता है तब अनित्य स्वभाव वाली संवेदनाओं को देखते-देखते पहली बार उसे नित्य, शाश्वत, ध्रुव स्वभाव वाली तरंगातीत निर्वाण की अनुभूति होती है। यह नितांत भवविमुक्ति की प्राथमिक अवस्था है। इसे स्रोतापन्न अवस्था कहते हैं। यानी, साधक नितांत भवविमुक्ति के स्रोत में पड़ गया। अब पूर्णतया विमुक्त होने से उसे कोई नहीं रोक सकता। अब वह ऊर्ध्वगति के अधिक से अधिक सात जन्म लेकर, पुनर्जन्म देने वाले सारे संस्कारों का क्षय कर लेता है।

## विसङ्गारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा ।

— चित्त सारे संस्कारों से विहीन होकर नितांत निर्मल हो जाता है।

तृष्णा के क्षय हो जाने पर नये संस्कार बनाता नहीं। उसे वह अवस्था प्राप्त हो जाती है जब कि—

## खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं ।

सभी पुराने संस्कार क्षीण हो गये हैं। नये बन नहीं पाते। वह व्यक्ति पुनर्जन्म से सर्वथा मुक्त, अरहंत कहलाता है।

तब वह दृढ़तापूर्वक इस सत्य की घोषणा करता है—

अयमन्तिमा जाति – यह मेरा अंतिम जन्म है।

नत्थिदानि पुनर्भवोति – अब पुनर्जन्म नहीं होगा।

– (दी०नि० १.३१, बोधिसत्तधम्मता)

यों जन्म-मरण के भव-संसरण से सर्वथा विमुक्त हो जाता है।

इन सारी अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए साधक को स्वयं परिश्रम-पुरुषार्थ करना होता है। कोई देवी, देवता, ब्रह्म अथवा ईश्वर मुक्ति प्रदान नहीं कर सकता। कोई सच्चा सत्गुरु होगा तो यही कहेगा— मैं मार्गदाता हूँ, मुक्तिदाता नहीं। जैसे कि भगवान बुद्ध ने कहा—

**तुम्हेहि किच्चमातप्यं, अक्खातारो तथागता ।**

– मुक्ति के लिए तपना तुम्हें ही पड़ेगा। तथागत तो केवल मार्ग आख्यात कर देते हैं।

इस मार्ग पर चलने वाला साधक कभी अंधभक्ति द्वारा किसी गुरु के चंगुल में नहीं फँसता। जान जाता है कि वह अत्ता हि अत्तनो नाथो, स्वयं अपना मालिक है। अत्ता हि अत्तनो गति, (अच्छी या बुरी) अपनी गति स्वयं बनाता है।

विपश्यना करते-करते गंभीर साधक को अपने बारे में कुछ-एक नैसर्गिक सच्चाइयां स्पष्ट होने लगती हैं।

१. एक तो यह कि जिन कुकर्मों को वह अपनी आसक्ति मान कर उनका न्यायीकरण करता आ रहा था, अब उसे स्पष्ट होने लगता है कि आसक्ति मादक पदार्थ या जूए अथवा व्यभिचार जैसे दुष्कर्मों के प्रति नहीं है, बल्कि इनके कारण जो संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं, उनके प्रति है। अब इस साधना द्वारा

इनसे संबंधित संवेदनाओं के उभरने पर उन्हें तटस्थभाव से जानते-जानते खत्म कर लेता है। तब इस प्रकार के दूषित संस्कारों के नवनिर्माण से छुटकारा पा लेता है।

२. यह सत्य भी बहुत स्पष्ट हो जाता है कि—

**पुब्बे हनति अत्तानं, पच्छा हनति सो परे ।**

– (थेरगाथापालि १३९, वसभत्थेरगाथा)

गंभीर साधक, चाहे वह कैदी हो या अन्य कोई, यह देखता है कि जब-जब वह मन में बदला लेने के भाव जगाता है तब-तब उसका शरीर तत्काल जलने लगता है। उसकी धड़कन बढ़ जाती है, तनाव बढ़ जाता है, वह दुःखी हो जाता है। तब वह खूब समझने लगता है कि किसी अन्य की सुख-शांति का हनन करने के पहले अज्ञानवश अपनी ही सुख-शांति का हनन करके, अपने आप को दुःखी बनाता रहता हूँ।

इन सच्चाइयों की अनुभूति से स्वभाव बदलने लगता है। द्वेष-दुर्भाव जगने के स्थान पर स्नेह-सद्भाव जगने लगता है। मैत्री, करुणा से मानस भर-भर उठता है। जीवन में सुख-शांति समा जाती है। मानव जीवन सफल हो जाता है।

ऐसी है विपश्यना, स्वानुभूत सच्चाई पर आधारित, सर्वथा कल्याणकारिणी! यही दुखियारे विश्व के लिए भगवान बुद्ध की अनमोल विरासत है।

**भवतु सब्ब मङ्गलं!**

